ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 68-70
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

बुन्देलखण्ड की दीवारी नृत्य एवं मौनिहा परम्परा का एक अध्ययन

डॉ0 आलोक कुमार पाण्डेय सह–प्राध्यापक– इतिहास विभाग, श्री कृष्णा विश्वविद्यालय, छतरपुर (म0प्र0), भारत

Received-08.04.2023, Revised-12.04.2023, Accepted-19.04.2023 E-mail: pikuawasthi4@gmail.com

सारांशः ***भारतीय लोकनृत्य मानव के प्रेरणास्रोत हैं। लोकनृत्य हमारी लोक संस्कृति की अद्वितीय शक्ति हैं। ये लोकनृत्य इतने वैभवशाली, सक्षम और सशक्त होते हैं कि विशाल जनसमूह को पूरी–पूरी रात बांधे रहते हैं। लोकनृत्यों का प्रादुर्भाव ग्रामीण परिवेश में प्राकृतिक रूप से हुआ है। अतः इनका आयोजन भी ग्रामीण समुदाय द्वारा विभिन्न अवसरों पर सहज रूप से किया जाता है। दीवारी नृत्य इस क्षेत्र के ग्रामीण अंचलों का एक प्रमुख लोकनृत्य है जो दशहरे से प्रारम्भ होकर दीवाली तक चलता है। दीवारी नृत्य में नृत्य एवं खेल दोनो समाहित हैं। दीवाली के दूसरे दिन इस नृत्य में एक अन्य समूह जिन्हें "मौनिहा" कहते हैं और सम्मिलित हो जाता है। दीवारी नृत्य में दीवारी खेल के विविध रूप होते हैं जिन्हें लाठी–डण्डों की सहायता से जोरदार प्रदर्शन के द्वारा खेला जाता है। दीवारी नृत्य एवं मौनिहा परम्परा के साथ कई लघु परम्पराएं भी साथ–साथ चलती हैं।***

कुंजीभूत शब्द– भारतीय लोकनृत्य, प्रेरणास्रोत, अद्वितीय शक्ति, वैभवशाली, सक्षम, सशक्त, विशाल जनसमूह, प्रादुर्भाव ग्रामीण परिवेश।

लोक संस्कृति ग्रामीण जीवन की आधारभूत विशेषता है। लोकनृत्य, लोक संगीत, लोक कहावतें, लोक कहानियां, लोकपर्व, लोक त्योहार, लोकगान इत्यादि अनेकानेक तत्व लोक संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। लोक संस्कृति के इन्हीं अंगों की वजह से क्षेत्र विशेष की लोक संस्कृति में भिन्नता एवं विशिष्टता के तत्व परिलक्षित होते हैं और यही विशिष्टता व भिन्नता क्षेत्र विशेष की लोक संस्कृति की पहचान होती है। लोक संस्कृति वह जीवित तथ्य है जिसके माध्यम से ग्रामीण जीवन की आत्मा स्वयं को अभिव्यक्त करती है।

लोकनृत्य लोक संस्कृति के धुरी हैं। ये लोकनृत्य लोक जीवन के मुंह बोलते चित्र हैं। भारतीय लोकनृत्य सर्वाधिक रचनात्मक, स्वाभाविक और मनोरंजक होने के साथ ही प्रकृत्ति के अधिक निकट हैं। मानव जीवन में उन्मुक्त उल्लास और उमंग की उज्जवल धारा प्रभावित करना इनका प्रधान गुण है। लोकनृत्य सहज और स्फूर्तिजन्य होते हैं। भारतीय समाज के आंचलिक रीति–रिवाज, कामकाज, पहनावा–ओढ़ावा, आस्था–विश्वास, धार्मिक व सांस्कृतिक परम्पराएं, सांस्कारिक रस्में, अन्तर्प्रेम, सहज–ऋंगार, खेती–बाड़ी, भक्तिभाव एवं व्यायाम आदि इन लोकनृत्यों में अन्तर्निहित होते हैं।

भारतीय ग्रामीण जीवन का सच्चा चित्र लोकनृत्यों में देखने को मिलता है। लोकनृत्यों के अवलोकन से ग्रामीण–परिवेश के सहज आचार–विचारों का स्पष्ट ज्ञान होता है। भारतीय लोक संस्कृति में लोकधर्मिता का विशेष महत्व होता है। यह लोकधर्मिता हमारे उत्सवों पर्वों, तीज–त्योहारों और सांस्कृतिक अवसरों आदि पर देखने को मिलती है। भारतीय लोकनृत्यों में तो लोकधर्मिता प्राणरूप में पाई जाती है। लोकनृत्यों का भारतीय लोकजीवन से गहरा संबंध है, क्योंकि लोक संगीत एवं लोकनृत्यों के द्वारा ही मानव की सांस्कृतिक पहचान की कल्पना की जा सकती है। भारतीय लोकनृत्य मानव के प्रेरणास्रोत हैं।

लोकनृत्य हमारी लोक संस्कृति की अद्वितीय शक्ति हैं। ये लोकनृत्य इतने वैभवशाली, सक्षम और सशक्त होते हैं कि विशाल जनसमूह को पूरी–पूरी रात बांधे रहते हैं। लोक रुचि के साधन के रूप में लोकनृत्य अपनी कलात्मक प्रवृत्ति में इतने परिपक्व होते हैं कि जन–सामान्य स्वाभाविक रूप से इनकी ओर आकर्षित होता चला आता है। लोकनृत्यों का एकमात्र उद्देश्य जन–जन को आनंद प्रदान करना होता है। वे अपनी इस मूल प्रवृत्ति के धनी होते हैं। उन्हें न तो किसी समीक्षक की आवश्यकता होती है और न ही किसी समालोचक की। वेशभूषा, अलंकरण, आभूषण, परिधान, भाव–भंगिमाएं, कथावस्तु, लोकगीत, लोकगान, लोकवाद्य, लोकनाट्य और अभिनय आदि का जीवंत समावेश होने के कारण लोकनृत्य अपनी मनोरंजनकारी शक्ति के धनी होते हैं।

लोकनृत्यों का प्रादुर्भाव ग्रामीण परिवेश में प्राकृतिक रूप से हुआ है। अतः इनका आयोजन भी ग्रामीण समुदाय द्वारा विभिन्न अवसरों पर सहज रूप से किया जाता है। ग्रामीणजन सरल लोकवाद्य यंत्रों की सहायता से लोकनृत्यों का संचालन करते हैं। लोकनृत्यों का प्राकृतिक आकर्षण जन–जन को नृत्य करने के लिए आमन्त्रित करता है। जिस अंचल की जैसी प्राकृतिक छटा होती है, वहां के लोकनृत्यों की रचना, चाल, प्रकृति–सौंदर्य, लोच–लचक और गति भी उसी के समान रहती है। किन्तु भौतिकता के आज इस युग में मानव जीवन और उसकी संस्कृति में परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के माध्यम से निरन्तर भौतिक नवीनताओं के सम्पर्क में आने के कारण मानव अपनी संस्कृति और निर्धारित मूल्यों से हटकर बहुत सी नई–नई सुख सुविधाओं का उपयोग कर रहा है। इसी संदर्भ में वह अपनी पारम्परिक मान्यताओं व आस्थाओं में भी परिवर्तन करता दिखाई दे रहा है। भारतीय लोकनृत्यों का पारम्परिक प्रचलन भी इससे प्रभावित हो रहा है। चमक–दमक के इस युग ने भारतीय लोकनृत्यों की मौलिकता और परम्परा को बुरी तरह प्रभावित किया है। परिणामस्वरूप आधुनिक बदलते परिवेश में गौरवशाली लोकनृत्य परम्परा पर भी प्रदूषण की परत चढ़ती दिखाई दे रही है। लोकनृत्यों के चलन, शैली, साज परिधान और प्रदर्शन आदि में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि हमारी किसी भी सांस्कृतिक और पारम्परिक धरोहर की मौलिकता को प्रत्येक स्थिति में बचाने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि यह हमारी विरासत है, देश की मूल्यावान सम्पत्ति है और ग्रामीण जीवन की अभिन्न सहज पहचान है।

उत्तर प्रदेश का बुन्देलखण्ड क्षेत्र सात जनपदों में विभक्त है। झांसी, जालौन, ललितपुर, महोबा, हमरीपुर, बांदा एवं चित्रकूट बुन्देलखण्ड के जनपद हैं। यह क्षेत्र निर्धन होतु हुए भी अपनी लोक संस्कृति, लोकनृत्यों, वीर कहानियों के लिए चर्चित है। दीवारी नृत्य इस क्षेत्र के ग्रामीण अंचलों का एक प्रमुख लोकनृत्य है जो दशहरे से प्रारम्भ होकर दीवाली तक चलता है। दीवारी नृत्य में नृत्य एवं

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

खेल दोनो समाहित हैं। दीवाली के दूसरे दिन इस नृत्य में एक अन्य समूह जिन्हें ''मौनिहा'' कहते हैं और सम्मिलित हो जाता है। दीवारी नृत्य में दीवारी खेल के विविध रूप होते हैं जिन्हें लाठी–डण्डों की सहायता से जोरदार प्रदर्शन के द्वारा खेला जाता है। दीवारी नृत्य एवं मौनिहा परम्परा के साथ कई लघु परम्पराएं भी साथ–साथ चलती हैं। प्रस्तुत अध्ययन की रूपरेखा इसी लोकनृत्य एवं मौनिहा परम्परा पर आधारित है जो समूचे बुन्देलखण्ड क्षेत्र के ग्रामीण अंचलों में हर्ष, उल्लास, मनोरंजन, कला प्रदर्शन, लोकधर्मिता, जातीय अन्तरसम्बद्धता, भाईचारे, वीरता का सशक्त उदाहरण है। चूंकि अध्ययन क्षेत्र को एक सीमा रेखा के भीतर बांधना होता है। इसलिए दीवारी नृत्य एवं मौनिहा परम्परा के सीमांकन के लिए हमने बांदा जनपद का चयन किया है। इस जनपद में दीवारी नृत्य एवं मौनिहा परम्परा का जीवंत चित्रण अभी भी देखने को मिलता है।

पूर्व अध्ययन– दीवारी नृत्य एवं मौनिहा परम्परा ऊपर से देखने में चाहे सरल प्रतीत होते हों परन्तु इनकी उत्पत्ति, इनके मूल स्वरूप, मूल आशय को जानना व समझना काफी कठिन है। इनका उद्‌भव तमाम छोटी–बड़ी परम्पराओं से जुड़ा है जिनका वर्णन लिखित रूप में बहुत ही कम उपलब्ध है। वे मौखिक परम्परा के द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती हैं। इस हस्तान्तरण में कई परम्पराएं लुप्त भी होती रहती हैं।

अभी तक बुन्देलखण्ड क्षेत्र की दीवारी नृत्य एवं उसके खेल के स्वरूप एवं मौनिहा परम्परा का किसी ने भी सारगर्भित अध्ययन नहीं किया। इनके संदर्भ में थोड़ी बहुत जानकारी स्थानीय पत्र–पत्रिकाओं में ही विद्यमान है। वर्ष भर में एक बार दिवारी नृत्य एवं मौनिहा परम्परा के समय समाचार पत्र भी इनके बारे में टूटी–फूटी जानकारी प्रकाशित करते रहते हैं।

जसविंदर शर्मा (2003) ने अपने लेख ''लोक संस्कृति की मूल चेतना'' में कहा है कि लोक संस्कृति समूहगत चेतना का प्रतीक है। सरलता, सहृदयता, सहिष्णुता, परम्परा, चेतना, गीत–संगीत, रीति–रिवाज, उत्सव, जन्म–मृत्यु के उपरांत सामाजिक रस्में आदि ऐसे तत्व हैं जो हमारी लोक संस्कृति में छिपे हुए हैं। यही वे सूत्र हैं जो मनुष्य को समाज से एक स्वस्थ धागे के साथ बांधकर रखते हैं। दया शंकर सिन्हा (1990) ने 'लोकरंग उ0प्र0' में दीवाली नृत्य या दीवारी नृत्य को युद्ध नृत्य कहा है क्योंकि नर्तकों की मुख्य क्रिया लाठियों से आपस में लड़ाई का प्रदर्शन करना है।

शरीफ मोहम्मद (2003) ने अपनी पुस्तक 'भारत के लोकनृत्य' में लिखा है कि लोकनृत्य प्रकृति की अनोखी देन है। प्रकृति दर्शन का दूसरा नाम ही लोकनृत्य है। लोकनृत्य ग्रामीण जीवन की अमूल्य धरोहर है। इनका उद्‌देश्य सम्पूर्ण समुदाय को आमोद–प्रमोद से ओत–प्रोत करना होता है। वसन्त निरगुणे (2005) ने अपनी पुस्तक 'म0प्र0 के लोकनृत्य' में दीवारी नृत्य को बरेदी नृत्य कहा है और इस नृत्य में यादव जाति के व्यक्तियों का बाहुल्य बताया है। स्पष्ट है कि दीवारी नृत्य एवं मौनिहा परम्परा का ग्रामीण परिदृश्य में अध्ययन का अभाव है। जो भी थोड़ी बहुत ऊपर जानकारी दी गई है, वह भी विशेष अवसरों पर व्यवसायिक रूप से आमन्त्रित नृत्यों के आधार पर संकलित की गई है। अतः दीवारी नृत्य एवं मौनिहा परम्परा का अध्ययन इस क्षेत्र में अति आवश्यक है ताकि विलुप्त होती हुई ग्रामीण अंचल की इस धरोहर को कुछ अंशों तक संकलित किया जा सके।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व– बुन्देलखण्ड क्षेत्र में जितने भी लोकनृत्य प्रचलित हैं उनमें दीवारी नृत्य का प्रमुख स्थान है। दीवारी नृत्य पुरुष प्रधान नृत्य है। इसमें स्त्रियां भाग नहीं ले सकती। दीवारी नृत्य एवं मौनिहा परम्परा बुन्देलखण्ड के ग्रामीण अंचलों की विशेषता है। यह नृत्य विभिन्न जातियों के बीच अन्तरसम्बद्धता को भी व्यक्त करता है। इसमें सहयोग एवं आपसी भाईचारे की भावना प्रदर्शित होती है। यह नृत्य सभी आयुवर्ग के व्यक्तियों का संगम स्थल है। ढ़ोल एवं नगड़िया की ध्वनि लोगों को नृत्य के लिए मजबूर कर देती है। दीवारी नृत्य में ऊंच–नीच, जातिपात का कोई स्थान नहीं है।

दीवारी नृत्य में दीवारी गान का भी अपना विशेष महत्व है जिसका कोई लिखित विवरण उपलब्ध नहीं है परन्तु बुजुर्ग व्यक्तियों द्वारा मौखिक रूप से यह नवयुवा पीढ़ी को सिखाया जाता है। दीवारी नृत्य एवं उसके खेल के विविध स्वरूप तथा मौनिहा परम्परा ग्रामीण जीवन में उमंग, उल्लास एवं कला प्रदर्शन के रसधार हैं। परन्तु भौतिकता एवं आधुनिकता के इस युग में दीवारी नृत्य एवं मौनिहा परम्परा पर व्यापक प्रभाव पड़ा है जिसके परिणामस्वरूप यह लोकनृत्य बहुत तेजी से लुप्त होता जा रहा है। आधुनिक मनोरंजन के साधनों ने ग्रामीण व्यक्ति का समय व चैन–शुकून दोनों छीन लिया है।

गांव में बढती गुटबंदी ने आपसी भाईचारे की भावना को विखंडित कर दिया है। ग्रामीण जीवन में भी व्यक्तिवादिता व धन के बढ़ते प्रभाव ने दीवारी नृत्य को कमजोर किया है। पढ़े–लिखे व्यक्तियों एवं गांव के लम्बरदारों द्वारा भी पहले जैसा प्रोत्साहन न मिलना भी इसके कम होने का एक कारण है। लगातार सूखे व असमय वर्षा के कारण ग्रामीण व्यक्तियों का पलायन भी नृत्य के कमजोर होने की एक वजह है क्योंकि इसको संरक्षण देने वाला एक बहुत बड़ा भाग गांव में रह ही नहीं गया।

दीवारी नृत्य एवं मौनिहा परम्परा का बुन्देलखण्ड क्षेत्र के ग्रामीण अंचलों में बहुत ही महत्व रहा है। परन्तु आज यह धीरे–धीरे लुप्त होती जा रही है। दीवारी गान समाप्त होते जा रहे हैं। मौन चराने वाले मौनिहों की संख्या बहुत ही अल्प रह गयी है। लाठी, डण्डों के बनाने, रंगने की कला क्षीण होता जा रही है। मोर पंखो के संकलन तथा गाय माता की भागर बनाने में किसी की भी रुचि नहीं दिखाई देती। दीवारी नृत्य की वेशभूषा तो लुप्त होने की कगार पर है।

दीवारी खेल के कई रूप तो अब बहुत सारे लोगों को खेलने ही नहीं आते। डोम में भी पहले जैसे ढ़ोल एवं नगड़िया बजाने में उमंग नहीं दिखाई देता। दशहरे से लेकर दीवाली के दूसरे दिन तक रात–रात भर चलने वाला यह लोकनृत्य कुछ घंटो में सिमटता जा रहा है। पूर्वजों की यह विरासत धीरे–धीरे समाप्त होती जा रही है। ग्रामीण जीवन की इस अमूल्य निधि को सहेजने एवं संरक्षण देने की आवश्यकता है। यद्यपि परिवर्तन के बहाव को काई रोक नहीं सकता परन्तु इस तरह के अध्ययन द्वारा दीवारी नृत्य एवं मौनिहा

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

परम्परा को लिखित रूप देकर एवं उसके छायाचित्रों का सचिव चित्रण करके आने वाली पीढ़ी को ग्रामीण जीवन से रुबरू कराने के लिए ऐसे अध्ययनों की महती आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिन्हा दयाप्रकाश : लोकरंग उत्तर प्रदेश, सांस्कृतिक कार्य विभाग, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1990.
2. दुबे श्यामाचरण : मानव और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1991.
3. बद्रीनारायण : लोक संस्कृति और इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1994.
4. रमेशचन्द्र : बांदा वैभव, महेश्वरी प्रेस बांदा, 1994.
5. चतुर्वेदी संजय : करमा, हिण्डालको इण्डस्ट्रीज लिमिटेड, रेनूकूट, सोनभद्र उ0प्र0, 2002.
6. गुप्ता एम0एल0 : भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, साहित्य भवन एवं पब्लिकेशन, आगरा, उ0प्र0 2002. शर्मा डी0डी0
7. शर्मा जसविंदर : लोक संस्कृति की मूल चेतना, कुरुक्षेत्र, मार्च 2003. ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली.
8. शरीफ मोहम्मद : भारत के लोकनृत्य, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2003.
9. निरगुणे वसंत : मध्य प्रदेश के लोकनृत्य, जनसंपर्क म0प्र0, बाणगंगा भोपाल, 2005.
10. रहमानी सबीहा : बुन्देली लोक संस्कृति क्षरण एवं संरक्षण, बांदा (उ0प्र0) 2012

*****